नियमसार १२३ गाथा।

संजमणियमतवेण दु धम्मज्झाणेण सुक्कझाणेण।
जो झायइ अप्पाणं परम-समाही हवे तस्स।।१२३।।

संयम नियम तप से तथा रे धर्म-शुक्ल सुध्यान से-
ध्यावे निजात्मा जो परम होती समाधि है उसे॥१२३॥

यहाँ समाधि का अर्थ परम अतीन्द्रिय आनन्द में रमना, वह परमसमाधि है। परम अतीन्द्रिय आनन्द ऐसा जो प्रभु आत्मा, ऐसा, उसमें रमना, उसका नाम समाधि है। वे बाबा समाधि लगावें, ऐसा नहीं। लोगस्स में भी आता है न? '**समाहिवरमुत्तमं दिंतु**' परन्तु उस समाधि का अर्थ आता नहीं। ऐसे के ऐसे पहाड़े बोलते जाते हैं।

टीका : यहाँ (इस गाथा में) समाधि का लक्षण (अर्थात् स्वरूप) कहा है। क्या? **समस्त इन्द्रियों के व्यापार का परित्याग सो संयम है।** पाँचों इन्द्रियों की ओर का लक्ष्य छोड़कर अतीन्द्रिय आनन्द की ओर लक्ष्य करना, उसका नाम संयम है। आहाहा! पाँचों इन्द्रियों का विषय जो शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श उसका लक्ष्य छोड़कर, आश्रय छोड़कर, उसकी ओर का झुकाव छोड़कर अनीन्द्रिय ऐसा जो भगवान आत्मा, उसमें

** अधिकरण=आधार। (अन्तरंग क्रिया का आधार आत्मा है।)*

लीनता करना। आहाहा! है ? वह परित्याग। इन्द्रियों का परित्याग और स्वरूप में एकाग्रता, वह संयम है। आहाहा! इसका नाम संयम। अकेला इन्द्रियों का परित्याग नहीं। इन्द्रियों का परित्याग तो तब कहने में आता है कि अनीन्द्रिय आत्मा का अनुभव हो, शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द प्रभु का अनुभव हो, तब इन्द्रियों का परित्याग कहने में आता है। अस्ति के भान बिना परित्याग कहने में नहीं आता। आहाहा! क्या कहा, समझ में आया ?

यहाँ तो ऐसा लिया कि **समस्त इन्द्रियों के व्यापार का परित्याग...** लो! ऐसे इन्द्रियों के व्यापार का परित्याग करके बैठे और ऐसे... ऐसा नहीं। इन्द्रियों के व्यापार का परित्याग, तब कहलाता है कि आत्मा अपने आनन्दस्वरूप है, उसमें लीनता करता है, तब इन्द्रियों का परित्याग कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया ? यह ऊपर भाषा तो ऐसी ले लेवे कि इन्द्रियों का व्यापार घटा, छोड़ दिया। फिर से विशेष लेंगे।

निज आत्मा की आराधना में तत्परता सो नियम है। यह नियमसार है न ? नियम किसे कहना ? पहले संयम आया। संयम—सं—सम्यग्दर्शनपूर्वक यम, उसका नाम संयम। जिसे सम्यग्दर्शन नहीं, वहाँ संयम नहीं होता। इसलिए कहते हैं कि **समस्त इन्द्रियों के व्यापार का परित्याग...** परित्याग। अकेला त्याग नहीं लिया। समस्त परित्याग। इन्द्रियों की ओर का झुकाव छोड़कर अतीन्द्रिय आनन्दकन्द प्रभु में संयम रहना-स्थिर रहना, वह संयम है। संयम कोई बाह्य क्रियाकाण्ड और क्रिया आडम्बर, वह कोई संयम नहीं है। **निज आत्मा की आराधना में तत्परता सो नियम है।** आहाहा! नियम उसे कहते हैं कि निज आत्मा जो आनन्दकन्द प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का दल, उसमें लीन होना, उस आराधना को यहाँ नियम कहते हैं। आहाहा! व्यवहार की बातें तो... उस व्यवहार का भी अभी कहाँ ठिकाना है ? आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है। **आत्मा की आराधना में तत्परता सो नियम है।**

जो आत्मा को आत्मा में आत्मा से धारण कर रखता है-टिका रखता है-जोड़ रखता है, वह अध्यात्म है... आहाहा! आत्मा में पुण्य-पाप के विकल्प से रहित पूर्णानन्द का नाथ, उस ओर की तत्परता, उसका नाम नियम है। आहाहा! है ? **वह अध्यात्म है और वह अध्यात्म सो तप है।** बाकी अपवास आदि और वर्षीतप करे, वह तो सब लंघन है, लंघन। तप नहीं। आहाहा! तप तो उसे कहते हैं कि **आत्मा की आराधना में तत्परता...** और आत्मा को अर्थात् शुद्ध चैतन्य। उसमें **आत्मा को आत्मा में...** आधार... और **आत्मा**

से... अपादान। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान (और अधिकरण) छह बोल आते हैं न? छह बोल। उनमें **आत्मा को आत्मा में...** आत्मा में... आहाहा! **आत्मा को आत्मा में आत्मा से...** राग के विकल्प से नहीं। आत्मा जो अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव है, उसके निर्विकल्प आत्मपरिणाम से आत्मा में टिकना, रहना, इसका नाम... है? तप है। अध्यात्म है। इसका नाम तप है। आहाहा!

यहाँ तो एक अपवास करे, अठ्ठम करे, वर्षीतप करे (तो) हो गयी तपश्चर्या। पाँच-सात हजार खर्च करे और ढिढ़ोरा पीटे कि वर्षीतप किया। धूल भी नहीं। वह सब लंघन है। लंघन है, लंघन। आहाहा! मिथ्यात्व का पोषण है। है कोई शुभभाव और मानता है तप, धर्म, निर्जरा। मिथ्यात्व का पोषण है। कठिन बात है, प्रभु! वीतराग का मार्ग बहुत कठिन है, भाई! अपूर्व और कठिन दो है। आहाहा! पूर्व में एक समय भी अनन्त काल के प्रवाह में कभी किया नहीं। ऐसी चीज़ अमूल्य-जिसकी कीमत नहीं, ऐसी अपूर्व चीज़ आनन्दकन्द नाथ, नव तत्त्व में जो आत्मा है, पुण्य-पाप-आस्रव-बन्ध तो पर्याय पर है, उससे भिन्न जो आत्मा है... आहाहा! द्रव्यस्वरूप से भगवान आत्मा है, उस आत्मा से आत्मा में तत्पर (रहना), उसका नाम अध्यात्म है और यह अध्यात्म, वह तप है। आहाहा!

समस्त बाह्यक्रियाकाण्ड के आडम्बर का परित्याग जिसका लक्षण है... आहाहा! दूसरी बात करते हैं। जरा लम्बी बात है। **समस्त बाह्यक्रियाकाण्ड...** मन-वचन से कुछ करना, कराना, अनुमोदन करना, इन सब क्रियाकाण्ड से रहित। आहाहा! **बाह्यक्रियाकाण्ड के आडम्बर...** वह तो सब आडम्बर है। दुनिया में देखे कि ओहो! यह त्यागी है। वस्त्र छोड़े, स्त्री-पुत्र छोड़े हैं परन्तु अन्दर मिथ्यात्व छोड़ना चाहिए, वह तो छोड़ा नहीं। त्याग तो उसका पहले होना चाहिए, उसकी तो खबर नहीं। मिथ्यात्व किसे कहते हैं, उसकी तो खबर ही नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि उस **बाह्यक्रियाकाण्ड के आडम्बर का परित्याग जिसका लक्षण है...** जिसका लक्षण है। आहाहा! **ऐसी अन्तःक्रिया के अधिकरणभूत आत्मा को—** अन्तर की निर्मल वीतरागी क्रिया जिसका आधार आत्मा है। आत्मा के आधार से, आश्रय से, अवलम्बन से जो वीतरागी आनन्द प्रगट हुआ, वह क्रिया धर्म है। आहाहा! लोगों को बहुत कठिन लगता है। **बाह्यक्रियाकाण्ड के आडम्बर का परित्याग...** परित्याग

है न ? परि अर्थात् समस्त प्रकार से। आंशिक भी बाह्य क्रिया आडम्बर का भाग नहीं कि यह क्रिया शुभ है। भगवान की भक्ति है, इसलिए इस भक्ति से मुझे कुछ होगा, ऐसा बिल्कुल नहीं है। बाह्य पदार्थ के अवलम्बन से अन्तर अवलम्बन कभी नहीं होता। आहाहा! कठिन है, भगवान!

बाह्यक्रियाकाण्ड के आडम्बर का परित्याग जिसका लक्षण है ऐसी अन्तःक्रिया के अधिकरणभूत आत्मा को—नीचे (फुटनोट में) **आधार। (अन्तरंग क्रिया का आधार आत्मा है।)** दया, दान, बाह्यक्रिया का आधार दिशा पर है। पुण्य, पाप, दया, दान, भक्ति, ब्रह्मचर्य शुभ वह राग है। राग की दिशा परसन्मुख है। राग की दशा की दिशा परसन्मुख है और वीतरागी परिणति की दशा स्वसन्मुख है। आहाहा! समझ में आया? जितने विकल्प उठते हैं, चाहे तो भगवान की भक्ति या स्मरण या यात्रा या चाहे जो, उस विकल्प की दिशा पर है। दशा की दिशा पर है और उस समय निर्विकल्प दशा की दिशा स्व है। तो अपने आत्मा के आधार से उत्पन्न हुआ... आहाहा! आया?

अन्तःक्रिया के अधिकरणभूत... अन्तर की निर्विकल्प... राग की क्रिया और पाँच इन्द्रिय के विषय से रहित अनीन्द्रिय ऐसा जो भगवान, उसकी क्रिया, उसका आधार भगवान आत्मा है। बाह्य क्रिया का आधार परवस्तु है। आहाहा! अन्तर रागरहित वीतरागी परिणति की क्रिया का आधार आत्मा है। आहाहा! दोनों की दिशा में अन्तर है, दोनों की दशा में अन्तर है, दोनों की दिशा में अन्तर है। दया, दान आदि का जितना राग उत्पन्न होता है, उस दशा की दिशा परसन्मुख है। परद्रव्य की ओर लक्ष्य है और वीतरागी परिणति होती है, उस दशा की दिशा स्व आत्मा आधार है। वीतराग परिणति का आधार त्रिकाल आत्मा है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। मनुष्यपना मिला, जैन में जन्में तो भी जैन परमेश्वर क्या कहते हैं, उसे सुनने को मिलता नहीं और अपनी कल्पना से जो मत, परम्परा मानकर बैठे, वह सब पाप की बातें पूरे दिन किया करते हैं। आहाहा! आत्मा की बातें, बापू! ऐसी सूक्ष्म है।

सम्यग्दर्शन, पाँच इन्द्रिय के विषय की ओर का झुकाव छूटकर, मन-वचन-काया की क्रिया का झुकाव छूटकर, उस ओर का झुकाव छूटकर अन्दर भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ है, उसमें झुकाव होता है, तब पर्याय में आत्मा अनुभव में आता है, उसका नाम सम्यग्दर्शन कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? और सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान होता ही

नहीं। मिथ्याज्ञान है, चारित्र मिथ्या है। व्रत तप, वह सब मिथ्या / निष्फल है। चार गति में भटकने के कारण हैं। आहाहा!

अन्त:क्रिया के अधिकरणभूत... अन्तर की वीतरागी परिणति निर्विकल्पदशा का आधार, अन्त:क्रिया अर्थात् अन्तर वीतरागी पर्याय। पाँच इन्द्रियों की ओर का झुकाव और मन-वचन-काया की ओर का झुकाव छोड़कर अन्त:क्रिया जो वीतरागस्वरूप की ओर ढले, उस क्रिया का आधार आत्मा है। वह आत्मा के आधार से वीतराग परिणति उत्पन्न होती है। वह वीतराग परिणति कोई राग, व्यवहाररत्नत्रय किया तो व्यवहाररत्नत्रय से धर्म की अन्त:क्रिया उत्पन्न होती है, ऐसा नहीं है। मार्ग समझे, न समझे। दुनिया चाहे जहाँ भटके। मार्ग तो यह है। आहाहा! समझ में आया?

अन्त:क्रिया के अधिकरणभूत... अन्तर धर्म की धार्मिक क्रिया, वीतरागभाव की क्रिया, वीतराग भाव की परिणति की पर्याय का आधार आत्मा है। आहाहा! कोई राग की मन्दता की या भक्ति आदि की, परमेश्वर की स्तुति की तो उससे कुछ अन्त:क्रिया प्रगट होती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! **कि जिसका स्वरूप अवधि रहित...** जो अन्त:क्रिया, वीतराग परिणति की क्रिया, उसका आधार आत्मा है। वह आत्मा कैसा है? आहाहा! **जिसका स्वरूप अवधि रहित...** जिसकी मर्यादा नहीं। **तीनों काल...** आत्मा भगवान है। आहाहा! किसी काल में पर्याय उत्पन्न हो, उसका काल होता है। पर्याय नाश हो, उसके काल में नाश होती है परन्तु भगवान आत्मा तो तीनों काल मर्यादा, तीनों काल जिसकी अवधि और मर्यादा है। आहाहा! है?

(अनादि काल से अनन्त काल तक) निरुपाधिक है... भगवान आत्मा तो परमात्मस्वरूप निरुपाधिक है। पर्याय में विकारादि है, वह आत्मा में-द्रव्य में नहीं है। आहाहा! द्रव्यस्वरूप जो भगवान आत्मा, वह तो निरुपाधिक है, त्रिकाल निरावरण है, त्रिकाल उपाधि से रहित है। आहाहा! त्रिकाल निरुपाधिक, (उपाधि से) रहित, उसमें निर्मल पर्याय भी नहीं। विकार आदि तो नहीं परन्तु धर्म की निर्मल पर्याय जो द्रव्य के अवलम्बन से उत्पन्न होती है, उस पर्याय का भी द्रव्य में अभाव है। आहाहा! द्रव्य तो तीनों काल एकरूप है। उसके अवलम्बन से पर्याय उत्पन्न हो, वह समय है। आहाहा! वह एक समय है। एक समय में द्रव्य के अवलम्बन से अनन्त निर्मल पर्यायें उत्पन्न होती हैं।

जिनकी निर्मल पर्याय का आधार आत्मा है। निर्मल पर्याय का आधार कोई देव-गुरु-शास्त्र और मूर्ति-प्रतिमा या सम्मेदशिखर और शत्रुंजय की यात्रा (वह नहीं है)।

मुमुक्षु : जिनवाणी....

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र पठन-पठन वह भी आधार नहीं। शास्त्र पढ़ना, वह भी विकल्प है। शास्त्र में तो ऐसा भी कहा है कि शास्त्र की ओर लक्ष्य जाएगा तो बुद्धि व्यभिचारिणी होगी क्योंकि वह परद्रव्य है। कठिन है, भगवान! हम दुनिया को सबको जानते हैं। आहाहा! मार्ग कोई दूसरा रह गया है। आहाहा! यह कहते हैं।

तीनों काल (अनादि काल से अनन्त काल तक) निरुपाधिक है... भगवान आत्मा। जिसमें भगवान की भक्ति के राग की भी उपाधि नहीं। आहाहा! राग, वह उपाधि है। **तीनों काल (अनादि काल से अनन्त काल तक) निरुपाधिक है उसे—जो जीव...** ऐसा जो आत्मा **उसे—जो जीव जानता है, उस जीव की परिणति-विशेष...** वह जीव की अवस्था-दशा विशेष। आहाहा! **वह स्वात्माश्रित...** वह परिणति स्वआत्मा-आश्रित। तीनों काल रहनेवाला भगवान आनन्दकन्द प्रभु, उसके स्व आश्रय से जो पर्याय उत्पन्न होती है... वह **निश्चयधर्मध्यान है।** आहाहा! गजब बात है।

मुमुक्षु : आत्मा में और आत्मा के आश्रय से प्रगट हुई शुद्धपर्याय।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा के आश्रय से प्रगट हुई, वह पर्याय है। धर्मध्यान। उसके आश्रय से हुई, पर के आश्रय से नहीं। निर्मल वीतराग धर्म की परिणति जो उत्पन्न होती है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की, उसका आधार त्रिकाली द्रव्य आत्मा है। आहाहा! अलग प्रकार का है। जज! यह तुम्हारे सब कानून अलग प्रकार के। सरकार के कहे वे कानून दिये रखो। यह कानून भगवान के घर का। कभी इसने सुना नहीं। अरे! प्रभु! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी तो बहुत फेरफार हो गया। आहाहा! कोतवाल... वे कहते हैं न, चोर कोतवाल को डण्डे, ऐसा हो गया है। सत्य बात कहते हैं तो यह नहीं... नहीं... यह एकान्त है... एकान्त है। करो एकान्त। मरो एकान्त करके। आहाहा!

भाई! वह निरुपाधिक आत्मतत्त्व जो है, वह निश्चय स्व आत्मआश्रित, स्व आत्मा आश्रित। परमात्मा के आश्रित नहीं, वीतराग आश्रित नहीं। वीतराग आश्रित करे तो राग ही

होता है। आहाहा! अपने द्रव्य का आश्रय छोड़कर कोई भी परद्रव्य अरिहन्तदेव, पंच परमेष्ठी का आश्रय करे तो राग ही उत्पन्न होता है और राग, वह चैतन्य की गति नहीं है; वह दुर्गति है। वह चैतन्य से विरुद्ध गति है। आहाहा!

यह मोक्षपाहुड़ में कहा है। '**परदव्वादो दुग्गई**' कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं मोक्षपाहुड़ की १६ वीं गाथा में कहा है। '**परदव्वादो दुग्गई**' स्वयं कहते हैं कि हम परद्रव्य हैं। यदि तेरा लक्ष्य हमारे ऊपर जाएगा तो तुझे चैतन्य की दुर्गति अर्थात् राग होगा। राग का फल चार गति है। इस राग का फल स्वर्ग है। वह स्वर्ग भी दुर्गति है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, बापू! यहाँ तो ४५ वर्ष से चलता है। सुननेवाले भी सुनते हैं। देश-परदेश सर्वत्र चारों ओर फैलाव हो गया है। अफ्रीका तक चला गया है। ४५ वर्ष से यह पुस्तकें बहुत छप गयी हैं। बाईस लाख तो यहाँ से छपी हैं और आठ लाख जयपुर से छपी हैं। अभी नये सात लाख रुपये की मुम्बई की ओर से छपानेवाले हैं। सात लाख की मुम्बई की ओर से। उसमें एक पुस्तक आयी है। आहाहा! सब व्याख्या स्पष्ट, बहुत स्पष्ट। साधारण चार कक्षा पढ़ा हुआ व्यक्ति भी पढ़ सकता है, ऐसी सादी भाषा है। परन्तु गरज हो उसकी बात है।

यहाँ कहते हैं **स्वात्माश्रित...** आहाहा! **निश्चयधर्मध्यान है।** भगवान पूर्णानन्द का नाथ, निर्विकल्प—रागरहित, भेदरहित, गुण और गुणी का जिसमें भेद भी नहीं। ऐसे भगवान आत्मा में ध्यान लगाना, वह निश्चयधर्मध्यान है। निश्चयधर्मध्यान का आश्रय आत्मा है। निश्चय-सच्चे धर्मध्यान का आश्रय परचीज़ नहीं। देव-गुरु-शास्त्र भी निश्चयधर्मध्यान का आश्रय नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : धर्मध्यान का काउस्सग्ग करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा के आश्रय बिना धर्मध्यान कहाँ है? राग है। राग है, राग। विकल्प। वह तो विकल्प है। अरिहन्त... अरिहन्त... अरिहन्त... अरिहन्त... अन्दर धुन लगावे, वह विकल्प है, राग है। राग है, वह तो ठीक परन्तु उसमें भेद नहीं। आत्मा गुणी है और यह आनन्दगुण है, ऐसा भेद भी दृष्टि का विषय नहीं है। आहाहा! सम्यग्दर्शन का विषय तो अकेला अभेद आत्मा है। स्व-आश्रय। अखण्ड स्व आश्रय। ऐसी बात है, प्रभु! जँचे, न जँचे दुनिया जाने। यहाँ कहाँ दुनिया की माने या आदरे तो यह ठीक है, ऐसा कुछ है नहीं। सत् को संख्या की कोई आवश्यकता नहीं है। सत् को सत् की आवश्यकता है।

अधिक संख्या हो और लाखों लोग मानें तो सत्य, थोड़े मानें तो असत्य, ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा! भाषा तो देखो! आहाहा!

स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान है। ध्यान-ध्येय-ध्याता, ध्यान का फल आदि के विविध विकल्पों से विमुक्त (अर्थात् ऐसे विकल्पों से रहित), अन्तर्मुखाकार... अन्तर्मुखाकार—अन्तर्मुख की परिणति। एकदम अन्तर्मुख परिणति। आहाहा! **(अर्थात् अन्तर्मुख जिसका स्वरूप है ऐसा), समस्त इन्द्रियसमूह से अगोचर...** कोई भी इन्द्रिय से, मन से भी अगोचर - गम्य नहीं, ऐसा प्रभु अन्दर आत्मा है। आहाहा! **अगोचर निरंजन-निज परम तत्त्व में...** आहाहा! निरंजन-निज परम तत्त्व भगवान आत्मा में **अविचल स्थितिरूप...** उसमें चलित होना नहीं, स्थिर होना। ऐसे निश्चय **स्थितिरूप (-ऐसा जो ध्यान) वह निश्चयशुक्लध्यान है।** धर्मध्यान में तो अभी ध्याता-ध्यान-ध्येय आदि विकल्प आते हैं और फिर एकाग्र होता है परन्तु थोड़ी एकाग्रता (होती है)। शुक्लध्यान में बहुत एकाग्रता है। बाकी वीतरागभाव, वह धर्मध्यान; वीतरागभाव वह शुक्लध्यान। वीतरागभाव, वह धर्म। क्यों?—कि आत्मा वीतरागस्वरूप है।

'घट घट अन्तर जिन बसै अरु घट घट अन्तर जैन, मत मदिरा के पान सौं मतवाला समझे न।' अपने मत के आग्रह के पक्ष के कारण... आहाहा! 'घट घट अन्तर जिन बसै...' जिन—स्वयं भगवान ही है आत्मा। आहाहा! और 'घट घट अन्तर जैन,...' उसका अनुभव करे वह जैन है। जैन कोई वाड़ा और पक्ष नहीं। हरिजन भी आत्मा का अनुभव करे तो वह भी जैन है और जैन में जन्मे हुए को जैन का भान नहीं तो वह भी जैन नहीं। कहो, दामोदरभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा!

(-ऐसा जो ध्यान) वह निश्चयशुक्लध्यान है। इन सामग्री-विशेषों सहित... यह सामग्री-विशेष अर्थात् अन्तर्दृष्टि। अन्तर्दृष्टि, अन्तरज्ञान, अन्तर रमणता। **इन सामग्री-विशेषों सहित (इस उपर्युक्त विशेष आन्तरिक साधनसामग्री सहित)...** अन्तर के साधनसामग्री सहित। **अखण्ड अद्वैत परम चैतन्यमय आत्मा को जो परम संयमी नित्य ध्याता है, उसे वास्तव में परम समाधि है।** आहाहा! एक-एक बोल कठिन है। समाधि का अधिकार है न? बाबा समाधि चढ़ावे, वह नहीं, हों! वह तो अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है। जैन के अतिरिक्त सब मार्ग मिथ्यादृष्टि के हैं। यह बात जरा सूक्ष्म पड़ती है, भाई! आहाहा!

दिगम्बर धर्म के अतिरिक्त भी कोई भी धर्म वह सब मिथ्यादृष्टि है। माने, न माने स्वतन्त्र है। त्रिलोकनाथ की वाणी है। समझ में आया? आहाहा! यह वाणी... कैसी?

(आन्तरिक साधनसामग्री सहित) अखण्ड अद्वैत... एकरूप प्रभु, **परम चैतन्यमय आत्मा को...** अब आत्मा कैसा है, वह सिद्ध किया। रागादि, इन्द्रिय आदि का विषय नहीं परन्तु चैतन्यमय आत्मा। चेतन-चैतन्यमय। चेतनद्रव्य आत्मा, चैतन्यमय वह ज्ञानमय। आहाहा! चैतन्यमय क्यों कहा? चेतनवाला ऐसा भी नहीं। अभेद कहा है। चैतन्यमय। चेतन, चैतन्यमय है। चैतन्यवाला है, ऐसा भी नहीं। वाला में भेद होता है। आहाहा! **परम चैतन्यमय आत्मा को जो परम संयमी नित्य ध्याता है,...** आहाहा! **उसे वास्तव में परम समाधि है।** छद्मस्थ की बात है। आहाहा! उसे अन्तर में शान्ति का स्वाद आता है और अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। और यह सब वीतरागपर्याय है, उसका अनुभव पर्याय में होता है। द्रव्य में अनुभव नहीं होता। द्रव्य तो ध्रुव है। उसके आश्रय से पर्याय में अनुभव होता है। वह शुक्लध्यान, धर्मध्यान की वीतरागी पर्याय, वह स्वआश्रय से है। आत्मा के आश्रय से दोनों उत्पन्न होते हैं। पर के आश्रय से उत्पन्न नहीं होते। आहाहा! एक श्लोक इतना अधिक कठिन पड़े। यहाँ तो बहुत बार यह पढ़ा गया है।

मुमुक्षु : आपने निश्चय की समाधि बतायी। निश्चय साधन।

पूज्य गुरुदेवश्री : साधन ही यह है, सामग्री ही यह है। सामग्री ही निश्चय सामग्री है। अन्तर में आनन्दस्वरूप की रागरहित एकाग्रता, वह उसकी सामग्री है। आहाहा! ऐसी बात! यहाँ तो अभी एकेन्द्रिय की दया पालो, पर को कुछ दान दो, आहार दो, पानी दो, तो धर्म होगा। यहाँ तो कहते हैं, तीन लोक के नाथ तीर्थंकर छद्मस्थ हों। जब छद्मस्थ आहार लेने जाते हैं, उन्हें आहार देने का शुभभाव होता है। धर्म-निर्जरा नहीं, परित संसार नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : उससे संसार कृश होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। यह बात कही थी। पोपटभाई के साथ 'गोंडल' में (संवत्) १९७७ के वर्ष। उनके रिश्तेदार। १९७७ के वर्ष में गोंडल में बहुत चर्चा हुई थी, इस भगवतीसूत्र में ऐसा आया है कि भगवान को रोग हुआ तो रेवती के घर से दवा ले आये और दवा खायी। दवा दी तो उसे परित संसार हुआ। कहा, यह बात मिथ्या है।

भगवान को रोग होता है, यह बात झूठ है; दवा लाये, यह बात झूठ है; दवा खायी, यह बात झूठ है और परित संसार हुआ, यह बात भी झूठ है। १९७७ के वर्ष की बात चलती है। १९७७ के वर्ष में गोंडल में रामजीभाई के रिश्तेदार पोपटभाई वृद्ध थे। आहाहा! पोपटभाई जादवजी। व्याख्यान में तो सब आते थे न? जहाँ जाएँ वहाँ सब आवें तो अवश्य। कितनों को न जँचे और कितनों को जँचे। यह सबको कहाँ से जँचे? बापू! आहाहा! वह भगवान है परन्तु भगवान का स्वरूप उसे जँचे कैसे? पामर दो बीड़ी पीवे, तब दस्त उतरे। सवेरे दो बीड़ी-सिगरेट पीवे, तब दस्त उतरे, ऐसे लक्षण। अब उसे भगवान.. भगवान.. बताना। तू भगवान है। तेरे आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है। पर के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन काल-तीन लोक में नहीं होता। आज माने, कल माने, बाद में माने, यह मानने से ही छुटकारा है। दुनिया तो दुनिया बहुत प्रकार से उल्टे रास्ते मनाती है। वह यहाँ कहते हैं।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब बातें बहुत है। खबर है। सब बात हो गयी है। मेघकुमार ने दया पालन की। वह क्या? पैर के नीचे आया तो परित संसार। सब मिथ्या बात है। बात एकदम खोटी है। आहाहा! दूसरा विपाक अधिकार है। विपाक में दस व्यक्ति मिथ्यादृष्टि ने साधु को आहार दिया और परित संसार किया, यह बात मिथ्या है।

यहाँ तो बात सत्य है। माने, वह माने और न माने, वह उसके घर रहा। यहाँ कोई पक्ष करना नहीं है। उसमें कोई अधिक लोग बढ़ाने नहीं है। आहाहा! बड़ी चर्चा हुई थी। विपाक की बड़ी चर्चा हुई थी। विपाकसूत्र है। सुख विपाक-दुःख विपाक। सुखविपाक में दस प्रकार के अधिकार हैं। सब देखा है। सत्रह बार तो भगवती (सूत्र) देखा है। भगवती के सोलह हजार श्लोक और सवा लाख की टीका। सत्रह बार। सब शास्त्र (देखे हैं)। उसमें यह जब अधिकार आया कि रेवती के यहाँ आहार लेने गये, भगवान को रोग हुआ, उसे परित संसार हुआ। बिल्कुल झूठ है, कहा। परद्रव्य के आश्रय से कभी संसार नहीं घटता। संसार बढ़ता है, प्रभु! क्या कहें? किसे कहें? क्या कहें? ऐसा है। आहाहा!

मुमुक्षु : .....प्रकृति का बन्ध तो क्या न?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रकृति उससे बन्ध नहीं हुआ, वह तो शुभभाव से हुआ है, वह

तो शुभभाव था तब हुआ, स्वयं को। यह तो वह रेवती आहार देने गयी थी न? ऐसा कहते हैं न और भगवान को रोग हुआ। क्या कहलाता है? दस्त।

मुमुक्षु : खूनी दस्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : खूनी दस्त। भगवान को होवे खूनी दस्त? उन्हें असाता का उदय होगा? आहाहा! तीन लोक के नाथ, वे तो आनन्दकन्द परम औदारिक शरीर होता है।

मुमुक्षु : वीतराग को असाता नहीं होती।

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतराग को नहीं होती, भाई! बहुत कठिन बात है, बापू! सब खबर है। दुनिया कहती है, वह सब खबर है। सब पढ़ा है न! अनेक शास्त्र (देखे हैं)। पैंतालीस सूत्र अनेक बार पढ़े हैं। बत्तीस सूत्र तो आठ महीने में वर्ष के वर्ष पढ़ते थे। फिर यह जो... १३ है वह एक बार (संवत्) १९७६ में देख लिया। पैंतालीस है न? दामनगर में १९७६ के वर्ष। एक माह अधिक था। उन पाँच महीनों में तो पैंतालीस बार लाखों करोड़ों टीका सब देखा। वाँचन तो... निवृत्ति थी न! परन्तु यह बात... आहाहा! कहीं नहीं है।

देखो! **सामग्री-विशेषों सहित...** इस सामग्रीसहित **(इस उपर्युक्त विशेष आन्तरिक साधनसामग्री सहित)...** आन्तरिक सामग्री। अन्तर की एकाग्रता ध्यान में, आनन्द में, वह अन्तर की सामग्री है। आहाहा! निर्विकल्प दशा, वह अन्तर की सामग्री है। अन्तर की सामग्री सहित। **अखण्ड अद्वैत परम चैतन्यमय आत्मा को जो परम संयमी नित्य ध्याता है,...** जो परम संयमी समकिती... समकित बिना संयम नहीं होता। सं—यम अर्थात् सम्यक्त्वसहित यम होता है। यम अर्थात् व्रत। जिसे सम्यग्दर्शन नहीं, उसे तो कुछ है ही नहीं। सब मिथ्यादृष्टि है। संयम भी नहीं, इन्द्रियदमन भी नहीं और व्रत भी नहीं तथा तप भी नहीं। आहाहा! कठिन बात है।

परम चैतन्यमय आत्मा को जो परम संयमी नित्य ध्याता है, उसे वास्तव में परम समाधि है। शान्ति है। आहाहा! वहाँ आत्मा में शान्ति है क्योंकि आत्मा शान्तस्वभावी पूरा भरा पड़ा है। शान्तस्वभाव का अर्थ चारित्रस्वरूप। आत्मा में चारित्रस्वरूप त्रिकाल है। पर्याय में प्रगटे, वह दूसरी चीज़ है। अन्दर आत्मा में चारित्र नाम का गुण त्रिकाल ध्रुव है, ध्रुव। आहाहा! उसे अकषायभाव कहते हैं। उसे अकषायभाव कहते हैं, शान्तभाव कहते

हैं, चारित्रभाव कहते हैं। वे सब ध्रुव हैं, ध्रुव। उसके आश्रय से जो संयम उत्पन्न होता है, उसे संयम और चारित्र कहते हैं। आहाहा! यह कहा, देखो। **संयमी नित्य ध्याता है, उसे वास्तव में परम समाधि है।**

अब, इस १२३वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:—

श्लोक-२०१

[अब, इस १२३वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

(अनुष्टुप्)

निर्विकल्पे समाधौ यो नित्यं तिष्ठति चिन्मये।
द्वैताद्वैत-विनिर्मुक्त-मात्मानं तं नमाम्यहम्।।२०१।।

(वीरछन्द)

निर्विकल्प चैतन्य समाधि में सदैव जो है रहता।
द्वैत-अद्वैत विकल्प रहित आतम को मैं वन्दन करता॥२०१॥

श्लोकार्थ : जो सदा चैतन्यमय निर्विकल्प समाधि में रहता है, उस द्वैताद्वैतविमुक्त (द्वैत-अद्वैत के विकल्पों से मुक्त) आत्मा को मैं नमन करता हूँ॥२०१॥

श्लोक - २०१ पर प्रवचन

निर्विकल्पे समाधौ यो नित्यं तिष्ठति चिन्मये।
द्वैताद्वैत-विनिर्मुक्त-मात्मानं तं नमाम्यहम्।।२०१।।

आहाहा! एक तो दुनिया के धन्धे के कारण निवृत्त नहीं। निवृत्ति मिले और घण्टे

भर सुनने जाए, वहाँ कुगुरु लूट लेता है। श्रीमद् कहते हैं। कुगुरु एक घण्टा लूट लेता है। उसे व्रत, नियम और तप में धर्म मनवा ले। मिथ्यात्व को सेवन करे। उसका एक घण्टा लुट गया। आहाहा! श्रीमद् कहते हैं। अरे रे! तत्त्व की बात बिना, प्रभु! अनन्त काल से भटकता है। निज जाति को जाने बिना परजाति से कुछ मुझे होगा, मुझे परद्रव्य से कुछ लाभ होगा, यह मान्यता मिथ्यात्व है। आहाहा! यह मिथ्यात्व अनन्त संसार का कारण है। मिथ्यात्व, वह संसार है। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पैसा, लक्ष्मी, धन, मकान, वह कोई संसार नहीं; वे तो अजीव चीज़, परचीज़ है। संसार तो स्वरूप से संसरण इति संसार। स्वरूप जो त्रिकाली आनन्द का नाथ है, उसमें से हटकर रागादि को अपना मानना, वह संसार है। आहाहा! संसार, वह आत्मा की एक विकारी पर्याय है। आहाहा! पर्याय अर्थात् अवस्था।

सम्यग्दर्शन है, वह आत्मा की निर्विकारी पर्याय है। मिथ्यात्व, वह आत्मा की विकारी पर्याय है। केवलज्ञान, वह आत्मा की पूर्ण निर्विकारी पर्याय है। सब पर्याय है। संसार पर्याय है, मोक्षमार्ग पर्याय है, सिद्ध पर्याय है, आर्तध्यान पर्याय है, रौद्रध्यान पर्याय है, शुक्लध्यान पर्याय है, धर्मध्यान पर्याय है। यह सब पर्याय है। आहाहा! इसमें अनजाने ने कभी सुना न हो। इसमें कितना ध्यान रखना? माणेकलाल के परिवार में हो न? यहाँ सुना था। माणेकलाल आता है न। गुजर गया न। उसके बड़े भाई भी गुजर गये। दोनों गुजर गये। छोटा आता है। आहाहा!

प्रभु! बात बहुत सूक्ष्म है। किसी का अनादर करने की बात नहीं है, प्रभु! तेरी महिमा का पार नहीं, नाथ! तू पर के आश्रय से प्रगट हो, ऐसा तू पंगु-पामर नहीं है। पर के आश्रय से तुझे कुछ धर्म का लाभ मिले, ऐसा तू पामर नहीं है, प्रभु! आहाहा! तेरे अन्दर में इतना अनन्त रत्न भरा है। चैतन्यरत्नाकर आत्मा है। चैतन्य के रत्न का आकर-सागर अन्दर है, भाई! आहाहा! उसकी अन्दर में ध्यान में नजर करने से पर रागादि की क्रिया का अभाव होने पर, निर्मल पर्याय प्रगट हो, उसका नाम धर्मध्यान और मोक्ष का कारण कहने में आता है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं, देखो!

श्लोकार्थ : जो सदा चैतन्यमय निर्विकल्प समाधि में रहता है,... आहाहा! मुनि तो जंगल में रहते थे। मुनि को कभी वस्त्र-पात्र नहीं थे। तीन काल में नहीं। भगवान के पास यह मार्ग है। यहाँ कहते हैं, वह मार्ग वहाँ महाविदेह में है। यहाँ कहते हैं... आहाहा!

सदा चैतन्यमय निर्विकल्प समाधि में रहता है, उस द्वैताद्वैतविमुक्त... आहाहा! मैं द्वैत— गुणी हूँ और मुझमें गुण है, ऐसा द्वैत का विकल्प भी जिसे छूट गया है और मैं गुणी हूँ, ऐसा विकल्प भी छूट गया है। द्वैत का भी विकल्प / राग छूट गया है, अद्वैत का भी विकल्प छूट गया है। द्वैत-अद्वैत का अर्थ **जो सदा चैतन्यमय निर्विकल्प समाधि...** जिसमें कोई राग के अंश का अवलम्बन नहीं है। भगवान की भक्ति, भगवान की पूजा, भगवान का स्मरण उसका आंशिक भी अवलम्बन नहीं है। आहाहा! वह सब तो राग है। उसमें धर्म मानना, वह तो मिथ्यादृष्टि संसार है। आहाहा!

जो सदा चैतन्यमय निर्विकल्प समाधि में रहता है, उस द्वैताद्वैतविमुक्त (द्वैत-अद्वैत के विकल्पों से मुक्त) आत्मा को मैं नमन करता हूँ। आहाहा! जो कोई अपने में द्वैत अर्थात् मैं आत्मा हूँ और यह गुण है, ऐसा द्वैत का विकल्प भी छोड़ता है और मैं गुणी हूँ, ऐसा विकल्प भी छोड़ता है, ऐसा द्वैताद्वैत का विकल्प छोड़ने से जो वीतराग ध्यान होता है, उसे मैं नमन करता हूँ। आहाहा! है ? ऐसे **आत्मा को मैं नमन करता हूँ।** आहाहा! इसमें एक घण्टे में याद कितना रखना ? धन्धे का सब याद रहता है। व्यापार की बात बहुत याद रखे। हमारे यहाँ दुकान में 'आनन्द' था। बहुत याद रखता। बड़ा व्यापार था न! कब आया था, कितना बिका, कितना पड़ा रहा, अभी उसका भाव मुम्बई में क्या है। यह त्रणपटी उसे खबर होती। आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्योंकि दुकान बड़ी थी, इसलिए मुम्बई का वह लेते। क्या कहलाता है ? पास। मुम्बई का पास; इसलिए तीन-चार दिन में मुम्बई माल लेने हमेशा जाना पड़े। बड़ा व्यापार। फिर मुम्बई का माल लावे। उसे त्रणपटी खबर होवे कि यह भाव अभी है। दुकान में हजारों चीज़ें। यह भाव अभी चलता है, इस भाव से यह लाये थे। उसमें से इतना बिका है, इतना बाकी है। ऐई! कान्तिभाई! तुम्हारा चूरा। आहाहा!

जिसे जिसकी प्रीति, उसे उसका काम सरल लगता है। आहाहा! रुचि अनुयायी वीर्य। रुचि अनुयायी वीर्य। जिसे जिसकी रुचि और पोषाण, उसकी ओर उसका वीर्य— पुरुषार्थ काम किये बिना नहीं रहता। जिसे जिसकी आवश्यकता ज्ञात हो, वहाँ वह पुरुषार्थ किये बिना नहीं रहता। आहाहा! न्याय-लॉजिक से (बात है)। यह तो वीतराग तीन लोक

के नाथ के न्याय हैं। आहाहा! रुचि जिस ओर की है, उस ओर वीर्य काम करता है। यदि पुण्य-पाप की रुचि हो तो वहाँ काम करता है। परन्तु भगवान ने तो ऐसा कहा कि पुण्य-पाप में रुचि करे, पुण्य-पाप करता है, वह नपुंसक है। वह नपुंसक है। पावैया को-हिजड़े को जैसे वीर्य नहीं होता, पुत्र नहीं होता; इसी प्रकार इसके शुभभाव में से धर्म प्रजा नहीं होती। इसलिए शुभभाव की रचना करनेवाला नपुंसक है। आहाहा! समयसार में आ गया है। शुभभाव चाहे जिस प्रकार का हो, परन्तु उसका स्वामी होता है और कर्ता होता है, वह नपुंसक / पावैया / हिजड़ा है। आहाहा! क्योंकि पावैया को वीर्य नहीं, इसलिए नपुंसक को पुत्र नहीं होता; इसी प्रकार इस शुभभाव में धर्म की प्रजा उत्पन्न नहीं होती। आहाहा! गजब बातें हैं।....कठिन पड़े। मार्ग तो ऐसा है, प्रभु! भगवान सीमन्धर प्रभु विराजते हैं। उनकी यह सब बात है। आहाहा!

कहते हैं **आत्मा को मैं नमन करता हूँ।** ऐसे आत्मा को मैं नमन करता हूँ। जिसे द्वैताद्वैत का विकल्प छूट गया है। मैं एक हूँ या मैं गुण और गुणी दो हूँ, ऐसा जिसे राग / विकल्प छूट गया है, उसे मैं नमन करता हूँ। आहाहा! उसका अर्थ यह हुआ कि विकल्प से कोई धर्म मानता है तो वह नमन करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! राग से धर्म मानते हैं, मनाते हैं और प्ररूपणा करते हैं, वे नमन करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! गाथा १२४।

किं काहदि वणवासो कायकिलेसो विचित्तउववासो।
अज्झयण-मोण-पहुदी समदा-रहियस्स समणस्स।।१२४।।

वनवास, कायाक्लेशरूप अनेक विध उपवास से।
वा अध्ययन मौनादि से क्या! साम्य विरहित साधुके॥१२४॥

टीका : आहाहा! **यहाँ (इस गाथा में), समता के बिना...** समता किसे कहते हैं? वीतरागभाव को। आहाहा! अन्दर में वीतरागभाव से भरा प्रभु है, उसके अवलम्बन से जो वीतरागदशा उत्पन्न होती है, उस वीतरागदशा को समता कहते हैं। सामायिक में कहते हैं न? सामायिक में समता का आय / लाभ। परन्तु अभी सम्यग्दर्शन नहीं, उसे सामायिक कहाँ से आ गयी? समता का लाभ। समतास्वरूप वीतराग आत्मा है, उसकी अनुभव दृष्टि हो, पश्चात् उसमें लीन होवे तो समता का, वीतराग का लाभ होता है। आहाहा! गजब बात है। ठीक आये। थोड़ा सुनने तो आये यहाँ क्या है यह? कुछ दूसरा प्रकार है। आहाहा!

वनवास, कायाक्लेशरूप अनेक विध उपवास से।
वा अध्ययन मौनादि से क्या! साम्य विरहित साधुके॥१२४॥

टीका : यहाँ (इस गाथा में), समता के बिना द्रव्यलिंगधारी श्रमणाभास को किंचित् परलोक का कारण नहीं है (अर्थात् किंचित् मोक्ष का साधन नहीं है)... समता के बिना द्रव्यलिंगधारी श्रमणाभास को... समता शब्द से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र निश्चय वीतरागभाव। आत्मा वीतरागस्वरूप ही त्रिकाल है। उस वीतरागस्वरूप की दृष्टि, उसका ज्ञान और उसकी रमणता तीनों ही वीतराग है। मोक्षमार्ग, वह वीतरागभाव है, यह कहते हैं कि उस वीतरागभाव **के बिना द्रव्यलिंगधारी श्रमणाभास...** साधु नाम धराकर द्रव्यलिंग धारण किया। आहाहा! **किंचित् परलोक का कारण नहीं है...** ऐसे द्रव्यलिंग धारण करके साधु होता है, नग्न-मुनि दिगम्बर होता है, पंच महाव्रत पालन करता है, अट्ठाईस मूलगुण पालता है, उसे किंचित् परलोक का कारण नहीं है, मोक्ष का किंचित् कारण नहीं है। परलोक अर्थात् मोक्ष। आहाहा!

यहाँ (इस गाथा में), समता के बिना... वीतरागी दृष्टि के बिना, वीतरागी परिणति के बिना मोक्ष का कारण नहीं है। **द्रव्यलिंगधारी श्रमणाभास को किंचित् परलोक का कारण नहीं है (अर्थात् किंचित् मोक्ष का साधन नहीं है) ऐसा कहा है।** आहाहा!

केवल द्रव्यलिंगधारी श्रमणाभास... द्रव्यलिंग नग्नपना धारण (किया)। नग्नपना, वह द्रव्यलिंग है। समझ में आया? वस्त्रसहित तो द्रव्यलिंग भी नहीं है। यह भगवान का वचन है। **केवल द्रव्यलिंगधारी श्रमणाभास को...** आहाहा! **समस्त कर्मकलंकरूप कीचड़ से विमुक्त और महा आनन्द के हेतुभूत परमसमताभाव बिना,...** आहाहा! अन्तर में समता का पिण्ड प्रभु वीतरागभाव से भरा है। उस वीतरागभाव के अवलम्बन से समता, वीतरागता उत्पन्न होती है, वही मोक्षमार्ग है। इस समता के बिना, यह मोक्षमार्ग जो स्वद्रव्य के आश्रय से है, इसके बिना... आहाहा! है न? इसके बिना...

(१) वनवास में बसकर... क्या हुआ? नग्न दिगम्बर मुनि वन में बसता है, तो उसमें क्या हुआ? आहाहा! आया? **कर्मकलंकरूप कीचड़ से विमुक्त और महा आनन्द के हेतुभूत परमसमताभाव बिना, (१) वनवास में बसकर वर्षाऋतु में वृक्ष के—नीचे स्थिति करने से,...** इससे तुझे क्या हुआ? वृक्ष के नीचे स्थिति करे, सिर पर वर्षा का पानी

गिरे तो उसमें क्या लाभ है ? कुछ लाभ नहीं है। आहाहा ! कठिन बात है, भगवान ! **आनन्द के हेतुभूत परमसमताभाव बिना, (१) वनवास में बसकर वर्षाऋतु में वृक्ष के—नीचे स्थिति करने से, ग्रीष्मऋतु में प्रचण्ड सूर्य की किरणों से संतप्त पर्वत के शिखर की शिला पर बैठने से...** तेज धूप हो और शिला पर बैठे, इससे क्या हुआ ? आहाहा ! वह सब अंकरहित शून्य है।

अन्तरस्वरूप सामग्री सम्यग्दर्शन; राग से विकल्प से भेद से रहित ऐसी दृष्टि हुई नहीं, अनुभव में आनन्द आया नहीं तो यह क्रियाकाण्ड सब व्यर्थ है। व्यर्थ नहीं; संसार फलेगा, परिभ्रमण मिलेगा। आहाहा ! यह कहते हैं, देखो ! आहाहा ! **शिखर की शिला पर बैठने से और हेमन्तऋतु में रात्रि में दिगम्बरदशा में रहने से,...** मूल तो दिगम्बर धर्म अनादि है। अनादि है और भगवान के पास यह चलता है। यह कोई सम्प्रदाय नहीं, पक्ष नहीं, कोई पन्थ नहीं। वस्तु का स्वरूप है। यह चीज़ है। यह कहते हैं कि **दिगम्बरदशा में रहने से, (२) त्वचा और अस्थिरूप (मात्र हाड़-चामरूप) हो गये सारे शरीर को क्लेशदायक महा उपवास से,...** आहाहा ! छह-छह महीने के अपवास किये, महीने के अपवास किये, वर्षीतप किये। क्लेशदायक। है न ? **सारे शरीर को क्लेशदायक महा उपवास से,...** उससे क्या हुआ ? वह सब बन्ध का कारण है। आहाहा ! विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)